वर्तमान हिन्दी साहित्य में चिन्तन के विविध धरातल

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ (उ.प्र.)

शोध सारांश

परिवर्तन समाज,साहित्य तदन्तर प्रकृति का यथार्थ होता है। आज समय तेजी से बदल रहा है और इक्कीसवीं सदी के प्रवेश द्वार पर खड़े होकर जब मानव अपने चारों ओर दृष्टि डालता है तो वह देखता है कि अनेक असमंजस एवं न चाहने के बावजूद भी वह अपने रहन–सहन में, चेहरे की मुस्कराहट में, मित्र–शत्रु से बातचीत में वह बहुत नयापन महसूस करता है। साथ ही भौतिक सुविधाओं को दोनों हाथों से बटोरने की बलवती इच्छा भी मन में समाए हुए है। मगर इस सबके बाद अपनी मानसिकता में आज वह कहाँ जी रहा है। टी. एस. इलियट ने अपने निबन्ध द फ्रंटियर आफ क्रिटिसिज्म (1918) में रचना–प्रक्रिया को कृति की आलोचना के संदर्भ में महत्वपूर्ण बताया था किसी रचना की सही आलोचना तभी हो सकती है जब उसके सृजन–उत्स और रचना–प्रक्रिया का ज्ञान हो। इलियट का मानना है कि रचना का मूल्यांकन, अनुभूति बनाम सहानुभूति या स्वानुभूति बनाम समानुभूति की दृष्टि से किया जाने लगे और लेखक को इस या उस पर लिखने से वंचित कर उसकी अन्तर्वस्तु या दायरा सीमित करने की कोशिश की जाने लगे, तब रचना–प्रक्रिया की प्रकृति के प्रकाश में इन सब बातों की परख करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार के आग्रह रचना–प्रक्रिया के स्वभाव को उलट देना चाह रहे हैं, जो खतरनाक हैं। हम सब कुछ अस्वीकार कर सकते हैं पर रचना–प्रक्रिया के स्वभाव को नहीं।

Key Words: *वर्तमान,हिन्दी साहित्य, अनुभूति बनाम सहानुभूति या स्वानुभूति बनाम समानुभूति चिन्तन,धरातल*

हिन्दी साहित्य अपने लगभग हजार वर्ष के अधिक इतिहास में अनेक विरोध एवं प्रतिरोधों को सहते हुए विविध विमर्शों को जन्म देकर आधुनिक से उत्तरआधुनिक हुई है। वास्तविकता यह है कि उत्तर आधुनिकतावाद बीसवीं सदी में साठ के दशक के उन मुक्ति आन्दोलनों से निकला है, जिसने व्यक्ति तथा व्यवस्था, अल्प समूह तथा वृहत समाज, विचारों तथा विसंगतियों, नीतियों, राजनीति व राष्ट्रीयता पर प्रश्नचिह्न ही नहीं लगाए हैं। बल्कि नारी मुक्ति, दलित–दमित–दमन विद्रोह, अश्वेत रोष, शांति मार्च, क्रान्ति, युवा विद्रोह और न जाने कितने छोटे–छोटे आन्दोलनों ने विभेदों और केन्द्रीयता के चक्रव्यूह को तोड़कर समाज को जनसमाज व संस्कृति को जनसमूह की संस्कृति में परिवर्तित कर दिया है। वर्तमान साहित्य में उत्तर आधुनिकता के प्रभाव क्षेत्र का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यह फिल्म से लेकर फैशन तक, विचार से लेकर

विज्ञापन तक, कल्चर से लेकर कॉमिक्स तक,कला से लेकर साहित्य–संस्कृति और यहाँ तक की इतिहास, दर्शन, मीडिया सभी इससे प्रभावित दिखाई दे रहे हैं। परिणामस्वरूप विरोधी विचार,हाशिए पर स्थित लोग,नारीवर्ग,दलित–आदिवासी जनजातियाँ,समलैंगिक स्त्री–पुरूष आदि जिन्हें समाज में सक्रियता व सांस्कृतिक संवाद के दायरे से बाहर रखा जाता था, अब अस्मिता के संघर्ष समूह बनकर केन्द्रीय पात्र के रूप में उभरे हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि आधुनिकतावाद की प्रतिक्रियास्वरूप उत्तर आधुनिकता समस्त प्रकार के मानवीय मूल्यों को नकारती हुई तेजी से बढ़ रही है। इसके साथ ही भूमण्डलीकरण के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रवादी अवधारणा को नकारते हुए उसे प्रश्नांकित करती है। निष्कर्षतः एकतावादी, मानववादी और समग्रतावादी मूल्यों की नकार है उत्तर आधुनिकता। यह आज की पीढ़ी को नैतिकता के बन्धनों से पूरी तरह आजाद करने की पक्षधर है तथा उग्र व्यक्तिवाद की पोषक भी है। यह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम उसकी अवधारणा और भारतीय पुनर्जागरण पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है। उत्तर आधुनिकता आज के बहुराष्ट्रीय पूंजीवाद को ही इंगित करने के साथ ही हमारे समय की सर्वाधिक चर्चित एवं विवादास्पद धारणाओं में से एक है। यह पश्चिमी ज्ञानोदय के विरूद्ध विचारात्मक अभिव्यक्ति भी है। हॉलाकि उत्तर आधुनिकता कोई स्पष्ट विचार प्रणाली नहीं है। लेकिन अनेक प्रकार की विचारधाराओं, चिन्तन प्रणालियों का उद्‌गम यहाँ है। अलग–अलग विद्वानों ने इस पर अलग–अलग दृष्टिकोणों से विचार किया है। देरिदा और फूकोयामा की समाज मीमांसा में पर्याप्त भेद हैं। देरिदा उत्तर आधुनिक समाज में बहुराष्ट्रीय निगमों वाले वैश्विक पूँजीवाद, राजनीतिक प्रभुत्व एवं साम्राज्यवाद के प्रखर विरोधी हैं तथा फूकोयामा इसके पक्ष में खड़े दिखाई देते हैं। इस प्रकार वैचारिक स्तर पर इसकी दो धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती हैं।

आज उत्तर आधुनिकतावादी लेखन और समीक्षा पद्धति का दूर तक बोलबाला प्रतीक हो रहा है। यह एक विराट बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन के बतौर उभरा है जिसकी व्याप्ति अनेक राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक–वाणिज्यिक, सांस्कृतिक, कलात्मक, साहित्यिक तथा प्रौद्योगिकीय संदर्भों में देखने को मिल रहा है। वैश्वीकरण, जनमाध्यम, बाजारवाद तथा उपभोक्तावाद भी उत्तर आधुनिकतावाद के प्रतिरूप या कहें कि सहचर ही हैं। विगत पाँच–छः दशकों से पाश्चात्य जगत में ही नहीं बल्कि भर उत्तर आधुनिकता को साहित्य के दो रूपों में संदर्भित किया जा रहा है। एक ओर उसके अभिलक्षणों के आधार पर रचनात्मक लेखन हो रहा है, तो दूसरी ओर साहित्य के मूल्यांकन की आलोचनात्मक प्रक्रिया का प्रभावी कारक बनकर भी वह उभरा है। पश्चिमी देशों में उत्तर आधुनिकता से निर्मित प्रतिमानों के आधार पर पूर्ववर्ती कृतिकारों की रचनाओं की पुनर्मीमांसा भी हुई जिसमें अनेकों रोचक तथ्य सामने आये हैं। परम्परागत आदर्शों को चकनाचूर करते हुए मनुष्य को अपने अनुसार जीने, सृजन करने और नव निर्माण करने के लिए खुला छोड़ दिया है। जहाँ मनुष्य तकनीकी कौशल के सहारे असंभाव्य को संभाव्य बना सकता है। भारतीय संदर्भ में उत्तर आधुनिकता यथार्थ से मीडिया परिचलित छाया में छलांग है। हकीकत तो यह है कि वह सूचना तंत्र के कृत्रिम जुड़ाव के रूप में वैश्विक ग्राम के सपने की वास्तविकता का जामा पहना रही है।

इस सन्दर्भ में डा0 रामविलास शर्मा जी का सबसे आशावादी स्वर देखने को मिलता है। आपका मानना है कि "हम अपनी संस्कृति को ध्यान में रखते हुए अपने ढंग का लोकतांत्रिक समाजवाद यहाँ बनायेगे।" लेकिन इन सबके बीच भले ही उत्तर आधुनिक युग में जहाँ नैतिकता का ह्रास होते हुए दिख रहा है वहीं कुछ लाभ भी हो रहे हैं। जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती क्योंकि जीवन तथा जगत् का कोई भी कार्य कीमत चुकाये बगैर पूरा नही होता। जहाँ अनेक समस्याओं का जन्म हुआ है, वही पश्चिम के एकाधिकार को भी चुनौती मिल रही है। साथ ही वर्गवादी और सामन्तशाही व्यवस्था को भी खारिज किये जा रहा है। जिससे हर वर्ग का व्यक्ति वैश्विक मानव के रूप में अपनी स्वतन्त्र अस्मिता को स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। दलित–आदिवासी, पिछड़ा वर्ग, नारी और उपेक्षित लोगों को केन्द्र में लाने का प्रयास उत्तर आधुनिक समय में प्रशंसनीय कार्य है। सच्चाई तो यह है कि अनेक विरोधाभाषों को सहते हुए समस्याओं को व्यापक परिदृश्य में प्रस्तुत करने का कार्य उत्तर आधुनिक साहित्य में देखने को मिल रहा है। क्योंकि अतीत के साथ वर्तमान की संगति बैठाकर भविष्य के लिये मार्ग सुगम करने की क्षमता उसमें दिखायी देती है।

साहित्य और संस्कृति का परस्पर घनिष्ठ संबंध होता है। संस्कृति जिन जीवन–मूल्यों का संचयन करता है, साहित्य उन जीवन–मूल्यों का पोषण करता चलता है। साहित्य या संस्कृति के स्थाई और सर्वमान्य मूल्य क्या हैं जिन्हें हम मनुष्यता की मूल्यवान धरोहर के रूप में सहेज सकें या जिनके कारण मनुष्य सही अर्थों में मनुष्य और उसके द्वारा रची जानेवाली संस्कृति सही मायनों में मानव संस्कृति है। वस्तुतः साहित्य और संस्कृति के स्थायी मूल्य वे हैं जिन्हें मनुष्य ने अपने लंबे सामाजिक जीवन में प्रकृति तथा परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अर्जित और समृद्ध किया है। संस्कृति मनुष्य की सामासिक सह अस्तित्व का बोध कराती है। साहित्य और संस्कृति युगानुरूप अपने अन्तर में विगत युगों को आत्मसात किये रहती है जिससे उनकी निरंतरता सदा बनी रहती है। लेकिन वर्तमान के साहित्य में इन तत्वों का ह्रास स्पष्ट तौर पर उत्तर आधुनिकता की वजह से हो रहा है।

शायद इसमें किसी को कोई आपत्ति हो कि उत्तर आधुनिक की चालक शक्ति विज्ञान और प्रौद्योगिकी है। संचार क्रान्ति तथा विश्वग्राम की अवधारणा जिसका परिणाम है। तकनीकी क्रान्ति ने इसे टिकाऊ बनाया है जिसके कारण उत्पादन बढ़ा है। लेकिन उसी अनुपात में मनुष्य के शोषण की दर भी अपेक्षाकृत कम हुई है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की परिकल्पना में मध्यमवर्गीय समाज की स्थिति को नजरअन्दाज नही किया जा सकता है–यह समाज का वह वर्ग है, जिसे जटिलतम् सामाजिक परिस्थितियों से रू–ब–रू होना पड़ता है। वैचारिक प्रक्षेत्र की प्रतिबद्धताओं और क्रियान्वयन की सीमाओं के कारण यह वर्ग अपने दृष्टिकोण और आशय की समस्याओं में उलझा रहता है। क्योंकि हमारी आर्थिक एवं सामाजिक मान्यताओं में आये परिवर्तनों ने व्यक्ति और वस्तु के आपसी संबंधों को भी बदलकर रख दिया है। थोड़ा, थोड़ा व्यक्ति इन्हीं में एक थोड़ा चुनता है। यही उपभोक्ता समाज है।

वस्तुतः उत्तर आधुनिकतावाद द्वारा परिचालित विविध विमर्श एक बहुआयामी, बहुस्तरीय एवं जटिल प्रत्यय है जिसकी भिन्न संदर्भों में परस्पर भिन्न व्याख्याएँ संभव हैं। स्त्री,दलित,आदिवासी–विमर्श का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण भी उसके एकाकी निष्कर्ष एवं सामान्यीकरण की इजाजत नहीं देता। उत्तर आधुनिकता की दृष्टि में हर रचना अथवा साहित्यिक कृति एक पाठ है। इसे जूलिया क्रिस्तिवा, जॉक देरिदा, पॉल डी मान,

हार्डमैन, मिलर आदि अन्तरपाठों के समुच्चय के रूप में देखते हैं। इस पाठ में गर्भित अर्थ और निगूढ़ताओं को उद्घाटित करना अतिशय चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस संदर्भ में हार्डमैन ने शेक्सपियर के हेमलेट से एक संवाद उद्धृत किया है कि 'पाठ भूत की तरह होता है जो व्याख्याकार को चुनौती देता है कि वह उसे समझे' यह तभी संभव है जब आलोचक अंतर्दृष्टि एवं प्रतिभा सम्पन्न हो जिससे वह पाठ के अलंकारों के विखंडन द्वारा उसका विरहस्यीकरण कर सके। इस पाठ के भीतर चल रही अर्थक्रीड़ाओं तथा उसमें निहित अर्थ की सुनी–अनसुनी अनुगूँजों को सुनने–सुनाने का कार्य उत्तरआधुनिक समीक्षा पद्धति द्वारा ही संभव है। देखा जाये तो उत्तर आधुनिकतावाद साहित्य में डिस्कोर्स अनालिस्ट को लेकर आया। विमर्श विश्लेषण, जिसे संवाद, बातचीत या डिस्कोर्स कहा गया, की धारणा का विस्तृत उपयोग उत्तर आधुनिकतावादियों ने किया। यह सिद्धान्त समाजशास्त्रीय व द्वन्द्ववादी दृष्टि का विरोधी है। चरक संहिता में भारतीय डिस्कोर्स का प्रारम्भिक रूप मिलता है परन्तु उत्तरआधुनिकतावाद संवाद की पद्धति पर बल देता है।

उत्तर आधुनिकतावाद को तात्कालिक परिवेश से जोड़कर यदि इसका मूल्यांकन करें तो वर्तमान के उत्तर आधुनिक समाज के मूल्यों का मानदण्ड मानव–प्रेम नहीं है। अपितु सामाजिक परिवेश के व्यापार एवं बाजार से उसका अटूट रिश्ता भी है। क्या मुक्त बाजार की अवधारणा का प्रवेश संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में भी उतनी ही आसानी से कभी हो पाएगा, जितनी आसानी से वह वर्तमान में आर्थिक और राजनीति क्षेत्र में उभरता चला आ रहा है। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या साहित्य में ऐसी अंदरूनी शक्ति और स्फूर्ति है कि वह प्रभाव और परिवर्तन की दिशा का निर्धारक बन सकता है?.....क्या यह भी असंभव नहीं कि मुक्त बाजार जिसने सदा जीवन को भी बाजार, खरीद–फरोख्त की वस्तु बनाकर उसको बाज़ार में खड़ा किया है और जो मानव की गरिमा को ध्वस्त करने का साधन बना है उस मुक्त बाजार के विरोध में जनमानस को जागृत और सचेष्ट करने का आरम्भ सर्वप्रथम संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में ही होगा ? क्या यह भी असंभव नहीं कि मुक्त बाजार (प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री पूरनचन्द जोशी के अनुसार) जो खगोलीकरण के नाम पर पिछड़े हुए राष्ट्रों की स्वायत्तता और उनकी अस्मिता को समाप्त कर उन्हें सशक्त पूंजीवादी देशों को आश्रित बनाकर एक नये उपनिवेशवाद के युग का सूत्रपात करने की क्षमता रखता है उसके विरोध में लामबंदी संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में आरम्भ होगी? हॉलाकि जोशी जी ने साहित्य की जिस शक्ति की ओर संकेत दिया है वह हमारे कालजयी साहित्य में पहले से ही मौजूद है। इन्हीं कुछ उत्तर आधुनिक स्थापनाओं को व्याख्यायित करती प्रस्तुत पुस्तक साहित्य के विविध समकालीन चर्चाओं को उजागर करने का कार्य करती नजर आती है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. राय गोपाल,हिन्दी उपन्यास का इतिहास–राजकमल प्रकाशन,दिल्ली–2002
2. सक्सेना डॉ0 ऊषा हिंदी उपन्यासों का शिल्पगत विकास–शोध साहित्य प्रकाशन,इलाहाबाद,1972
3. नवीन देवी शंकर, मिश्र सुशांत कुमार, उत्तर आधुनिकता कुछ विचार–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–1997
4. पांडे, सीतांशु, भूषण,डॉ0 शशि आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के औजार–म.रा. प्र0 समिति,अक्षरा,भोपाल,म.प्र.

5. चौहान डॉ0 संजय,आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता– तरुण आर्ट प्रेस ,जालंधर ,पंजाब
6. यादव डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, उत्तर आधुनिकता : विचार और मूल्यांकन,ओमेगा प्रकाशन,नई दिल्ली,2010
7. पचौरी सुधीश,उत्तर आधुनिक साहित्य विमर्श–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–2006
8. मदान इन्द्रनाथ, आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास–वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली–2008
9. परम्परा,इतिहासबोध और संस्कृति–श्यामा चरण शुक्ल,राजकमल प्रकाशन,दिल्ली–2011
10. पालीवाल कृष्णदत्त, उत्तर आधुनिकता और दलितवाद–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–2006
11. यादव राजेन्द्र ,उपन्यास : स्वरूप और संवेदना–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–1997
12. साहनी भीष्म, आधुनिक हिन्दी उपन्यास–राजकमल प्रकाशन,दिल्ली–1980
13. 13.डॉ0 स्वर्ण माला,स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि–विवेक पब्लिशिंग,जयपुर, 1975
14. श्रीवास्तव सुधारानी, भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति–कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, दिल्ली, 1997
15. अरोड़ा अतुलवीर, आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास–पब्लिकेशन ब्यूरो,पंजाब विश्वविद्यालय,1974
16. आसोपा पुरूषोत्तम, आजादी के बाद का हिन्दी उपन्यास–सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, 1983
17. उपाध्याय डॉ0 देवराज, आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, 1956
18. कपूर श्यामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास–आर्य प्रकाशन मण्डल, 1991
19. कोहली नरेन्द्र, हिन्दी उपन्यास : सृजन और सिद्धान्त–वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989
20. पचौरी सुधीश,उत्तर आधुनिकता प्रस्थान बिन्दु– वाणी प्रकाशन,दिल्ली–2006
21. यादव डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, उत्तर आधुनिकता : कुछ अक्स, कुछ अन्देशे, ओमेगा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010